मां का ढाका आगमन

२५ अगहन, बुधवार १३४२ सन् (२१ दिसम्बर, १९३४ ई.) दोपहर १२ बजे श्रीयुक्त भूपतिनाथ मित्र महाशय एक तार हाथ में लेकर आये और बताया कि आगामी २३ दिसम्बर, शुक्रवार को श्री श्री माँ और बाबा भोलानाथ ढाका आ रहे हैं । यह समाचार सुनकर मैं प्रसन्न हो उठा । बुध और गुरुवार को दिन भर यही चर्चा होती रही कि माँ आ रही हैं । सभी के चेहरे पर प्रसन्नता थी । सभी आनन्द से अधीर थे। माँ को देखने के लिए लोग कितने व्याकुल हैं, यह उनकी आकृति के चिह्न स्पष्ट रूप से प्रकट कर रहे थे ।

माँ का स्वागत करने के लिए हम लोग नारायणगंज गये । स्टीमर दोपहर एक बजकर दस मिनट पर आया। माँ और बाबा भोलानाथ ज्योंही जहाज से उतरे त्योंही भूपति बाबू ने उनके गले में माला पहनायी । हम लोग ढाका वाली गाड़ी पर आकर बैठ गये । माँ के साथ इस बार श्रीमती भ्रमर भी आयी हैं । गाड़ी में माँ देर तक नीरव बैठी रहीं । बाद में बातचीत करने लगीं, किन्तु उनका स्वर अस्पष्ट था । इस तरह अस्पष्ट बातें मां के मुख से कभी नहीं सुन पाया था । सुना कि देहरादून से चलते समय रास्ते में ऐसा हो गया है । माँ मानो अर्द्ध समाधि की स्थिति में हैं । मैं डर गया । कहीं मां मौनी न हो जाय ।

बहरहाल गाड़ी २॥ बजे ढाका पहुँच गयी। ढाका स्टेशन पर अनेक भक्त इंतजार कर रहे थे । जय ध्वनि के साथ मां और भोलानाथ बाबा की अभ्यर्थना की गयी । श्रीयुक्त शचीन्द्रचन्द्र घोष महाशय की कार में मां और बाबा को स्टेशन से आश्रम तक ले आया गया । हम लोग पैदल ही आये । आश्रम में आकर देखा कि महिलाओं ने मां को इस प्रकार घेर रखा है कि हम लोग मां के समीप जा नहीं सकते । लाचारी में बाहर मैदान में आकर इंतजार करने लगे ।

कुछ देर बाद मां और बाबा भोलानाथ दादा महाशय (श्री श्री माँ के पिता श्री युक्त विपिन बिहारी भट्टाचार्य) से भेंट करने के लिए स्वर्गीय ईश्वर घोष महाशय के बाग की ओर रवाना हुए । हम लोग भी चल पड़े । बाग में आकर माँ ने दादा महाशय (नानाजी) को प्रणाम करने के बाद पोखर के घाट पर आकर बैठ गयीं ।

स्वामी शंकरानन्द ने माँ से कहा – "माँ, तुमने दादा महाशय को तो प्रणाम किया, पर दीदीमां को नहीं किया ?"

माँ हंसकर बोली – "मैं यह भूल गयी ।"

बाद में दीदीमां को उन्होंने प्रणाम किया । जमीन से सिर लगाकर हम लोगों को प्रणाम किया । यहां तक कि अपने पैरों पर सिर झुकाकर स्वयं को भी प्रणाम किया ।

स्वामीजी ने पुनः कहा – "माँ, प्रणाम तो सब पूर्ण हो गया, पर एक असंपूर्ण रह गया ।"

माँ ने पूछा – "क्या असंपूर्ण रह गया ?"

स्वामीजी – तुमने भोलानाथ को प्रणाम नहीं किया ।

माँ ने वापस आकर भोलानाथ को प्रणाम किया। सारी कार्यवाही हंसती हुई खेल के भाव में करती रहीं । मैं अवाक् होकर मां की ओर देखता रहा। मां हम लोगों की ओर देखती हुई हंसने लगीं ।

दीदीमां के यहाँ से आश्रम आकर माँ मैदान में बैठ गयीं। एक ओर महिलाएं बैठीं, दूसरी ओर हम लोग बैठे । एक–एक कर अनेक महिलाएँ मां को प्रणाम करने के बाद वापस जाने लगीं । एक तीन–चार वर्ष का बालक सिर पर टोपी पहने माँ के सामने आकर खड़ा हो गया और हाथ जोड़ते हुए मां को उसने प्रणाम किया ।

उसके प्रणाम करने का ढंग देखकर हम लोग हंस पड़े । माँ भी खूब हंसने लगीं और उस बच्चे को लक्ष्य करती हुई बोलीं – "तुम तो साहब बन गये हो, बिलकुल साहब ।"

दीर्घ जीवन पुण्य से प्राप्त होता है

ठीक इसी समय श्रीयुक्त योगेशचन्द्र घोष महाशय अपनी पत्नी के साथ आये । दोनों ही काफी वृद्ध हैं । योगेश बाबू की पत्नी माँ के पास बैठीं और मां के दोनों हाथों को अपने हाथों में लेती हुई बोलीं – और कितने दिन मुझे भोगना है ? मैं तो मर रही थी, पर फिर बच गयी । अब तुम बताओ कि मुझे कितने दिनों तक भोगना है ?

माँ – दीर्घ जीवन पुण्य का फल होता है । जितने दिनों तक जीवित रहा जाता है, उतना ही भोग कट जाता है । मृत्यु–चिन्ता करने की जरूरत नहीं, बल्कि यह सोचिये कि मेरा भोग कटता जा रहा है।

योगेश बाबू की पत्नी – मैं बुरी तरह बीमार हो गयी थी । (भूदेव बाबू की पत्नी को दिखाती हुई) मेरी यह लड़की और एक अन्य लड़की काफी सेवा करती रही ।

माँ–सेवा करना औरतों का कर्त्तव्य है । अपने सुख के लिए इनका जन्म नहीं हुआ है ।

योगेश बाबू की पत्नी–(योगेश बाबू को दिखाती हुई) आजकल मैं इन्हें लेकर हूँ । देखो न, इन्हें कैसा सजायी हूँ ।

योगेश बाबू जरा दूर बैठे थे । वे कोट, पैण्ट और टोपी पहने हुए थे ।

माँ–(हंसकर) तुम उन्हें गोपाल समझना । इसी प्रकार इन्हे सजाती रहना।

इसी प्रकार की बातें चल रही थीं । शाम का अंधेरा बढ़ रहा था । माँ अस्पष्ट रोशनी में बैठी बातें कर रही थीं । ठीक इसी समय भ्रमर आकर माँ को भीतर ले गयी । उस समय मंदिर में आरती

हो रही थी । आरती समाप्त होने के बाद हम लोग प्रसाद लेने के लिए आश्रम के भीतर गये । उसे समय माँ नाम घर में बैठी थीं और बालकवृन्द कीर्तन कर रहे थे । कीर्तन अच्छा लगा । लेकिन मैं यह सोचने लगा कि कीर्तन बन्द करके माँ को कुछ देर विश्राम करने देना चाहिए, कल तारापीठ से रवाना होकर आज ढाका आयी हैं । दिन–रात में जरा भी आराम करने का मौका नहीं मिला, तिस पर माँ उपवास पर हैं। लिहाजा आराम की सख्त जरूरत है ।

गृहाभ्यन्तर में माँ के सोने की इच्छा नहीं

बहरहाल कीर्तन समाप्त होने के बाद माँ से शयन करने का अनुरोध किया गया तब माँ ने कहा – "मैं अन्नपूर्णा मंदिर के बरामदे में सोऊँगी।"

अखण्डानन्दजी ने आपत्ति करते हुए कहा कि वहाँ तो ब्रह्मचारी लोग सोयेंगे ।

माँ – उनके सोने पर भी मेरे लायक जगह निकल आयेगी । जब एक बार मैंने कह दिया तब में यहीं रहूँगी ।

कुछ देर बाद अखण्डानन्दजी ने आकर माँ को सूचना दी कि भोलानाथ उन्हें बुला रहे हैं । माँ उनकी कुटिया की ओर चल पड़ीं। हम लोग पीछे–पीछे गये । वहाँ जाकर देखा–असाधारण समस्या है। बाबा भोलानाथ का कहना है कि माँ क्यों बाहर सोयेंगी । कमरे में क्या दोष है, आदि।

इधर माँ कोमल तथा दृढ़ स्वर में कह रही हैं कि वे बरामदे में ही सोयेंगी, पर कारण नहीं बता रही हैं । बाबा भोलानाथ मौन हैं, इसलिए वे अपनी बातें लिखकर बता रहे हैं । वे कह रहे हैं कि इसीलिए मैं ढाका नहीं आना चाहता था । ढाका आने पर कोई–न–कोई गोलमाल होगा, इसका अनुभव उन्हें पहले ही हो गया था ।

इस गोलमाल का सूत्रपात मंदिर के बरामदे में सोने से लेकर प्रारंभ हो रहा है (अर्थात् बाबा भोलानाथ का विचार है कि अब माँ कमरे में प्रवेश नहीं करेंगी । संन्यासिनी बनकर पहाड़ों पर घूमती रहेंगी) । यहाँ तक कि वे नाराज होकर बोले कि अगर माँ बरामदे में सोयेंगी तो वे किसी ओर चले जायेंगे ।

यह बात सुनकर मां जरा गंभीर होकर बोल उठी – "चले क्यों जाओगे? अगर तुम्हारी इच्छा हो तो चलो, तुम भी बरामदे में सो जाना और नहीं तो इसी कमरे में सो जाओ । मेरे ख्याल के बारे में जानते ही हो । जब मेरे मन में ख्याल आ गया है कि बरामदे में रहूँगी तब मुझे वहीं रहना पड़ेगा। प्रत्येक समय मेरे मुँह से नहीं निकलती। पर यह जान लो कि विशेष कारण से ही मैं वहां रहना चाहती हूँ। (हम लोगों की ओर लक्ष्य करती हुई) तुम लोग भोलानाथ से कहकर मुझे बरामदे में सोने की अनुमति दिलाओ ।"

प्रमथ बाबू – हम लोग क्यों अनुमति लेंगे ? तुम भोलानाथ को राजी कराओ ।

भोलानाथ राजी नहीं हो रहे थे और इधर माँ भी जिद्द नहीं छोड़ रही थीं । इसी समय गणेश बाबू ने कहा– "माँ, कैलास पर हर–पार्वती में इसी प्रकार का झगड़ा होता है ?"

माँ–(गंभीर रूप में) तुमने हर–पार्वती देखा है ?

गणेश बाबू–नहीं, सुना है ।

माँ–(पहले की तरह गंभीर रूप में) सुनी हुई बात नहीं कहते । पहले हर–पार्वती को देख लो, तब कहना ।

यद्यपि माँ ने इस बात को धीर और शान्त रूप में प्रकट किया, पर ऐसा लगा जैसे सारी बातें कशाघात की तरह हमारे चेहरे से टकरा गयीं । माँ की बातें सुनने के बाद किसी को कुछ कहने की हिम्मत

नहीं हुई । अब कोई सामान्य बात कहने नहीं गया । मुझे यह सब अच्छा नहीं लग रहा था। मैंने कमरे से बाहर आकर सारी घटना निशि बाबू को सुनाई । निशि बाबूं काफी चिन्तित हो उठे ।

उन्होंने कहा – "तारापीठ से यात्रा करते समय बाधा आयी थी। पता नहीं कौन सा अमंगल होने वाला है ?"

मैंने देखा कि बाहर खड़े रहने से कोई लाभ नहीं है। यह वाद–विवाद जितनी जल्दी समाप्त हो जाय, अच्छा है । यह सोचकर मैं माँ के पास आकर बैठ गया और बाबा भोलानाथ से कहा–"बाबा, मैं एक बात कहना चाहता हूँ ।"

भोलानाथ मेरी ओर देखने लगे ।

मैं–इसके पहले यह देखा गया है कि मां की इच्छा के विरुद्ध कार्य करने पर अमंगल होता है । एक बार पुरी में रथयात्रा के समय रथयात्रा बिना देखे पुरी से रवाना होना चाहती थीं, उस समय बाधा देकर माँ को रोक लिया गया था । नतीजा यह हुआ कि निर्मल बाबू का लड़का कुएं में गिरकर मर गया ।

बाबा भोलानाथ ने सिर हिलाकर इसे अस्वीकार किया । उन्होंने इंगित करके दिखाया उनकी बात न मानने के कारण ऐसा हुआ था। उन्होंने लिखकर यह भी बताया कि मैंने माँ को बरामदे में सोने को जो मना किया है, वह हम लोगों के लिए ही । इसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है ।

मैंने माँ से कहा–"माँ, तुम कहो कि अगर मंदिर के बरामदे में तुम सोओगी तो हम लोगों का कोई अमंगल नहीं होगा ।"

१. श्रीयुक्त निशिकान्त मित्र । आप माँ के पुराने भक्त हैं। आजकल संन्यासी की तरह जीवन बिता रहे हैं। माँ ने इन्हें देहरादून स्थित रायपुर के मंदिर में साधना करने का आदेश दिया है ।

माँ–नहीं, तुम लोगों का कोई अमंगल नहीं होगा ।

मैं–तुम यह भी कहो कि आज जो कमरे में प्रवेश नहीं करना चाह रही हो, इसका अर्थ यह नहीं है कि इसके बाद तुम सन्यासिनी बनकर कहीं चली जाओगी ।

मेरी बात सुनकर बाबा भोलानाथ हँस पड़े और इशारे से बताया कि वे अबतक यही बात कहते आ रहे हैं ।

माँ–मैं कहां चली जाऊँगी ?

मैं–जंगल या पहाड़ों पर जा सकती हो । तुम कहां जाओगी, यह हम कैसे बता सकते हैं ? तुम्हें न देखने पर यही सोचेंगे कि हमने तुम्हें खो दिया ।

माँ–यह सब बातें क्यों पैदा हुई ? ढाका आने की बात चलने पर मैंने कहा था कि अगर मेरा शरीर रहे और तुम लोग ढाका में रखना चाहो तो मैं चल सकती हूँ । मैं मंदिर के बरामदे में सोना चाहती हूँ, उसके साथ भविष्य में मैं क्या करूँगी या नहीं करूँगी, इसका कोई सम्बन्ध नहीं है ।

यह सुनकर मैंने बाबा भोलानाथ से कहा–"माँ जब यह कह रही हैं कि मंदिर के बरामदे पर सोने से किसी का कोई अमंगल नहीं होगा तब आप किसी प्रकार की बाधा न डालें। आप प्रसन्न भाव से अनुमति दें ।"

फिर भी बाबा आशंका प्रकट करते रहे। प्रमथ बाबू भी बाबा का पक्ष लेने लगे ।

मैंने झल्लाकर प्रमथ बाबू से कहा–"आप लोग बाधा न डालें । माँ जब कह रही हैं कि वे मन्दिर के बरामदे पर सोयेंगी तब वह अन्यथा नहीं हो सकता और अन्यथा होना भी ठीक नहीं हैं । फिर माँ तो कह रही हैं कि अमंगल की कोई आशंका नहीं हैं ।"

बहरहाल यह निश्चय हुआ कि माँ बरामदे में सोयेंगी । मैं कमरे से बाहर चला आया । माँ मन्दिर के बरामदे पर जाकर बैठ गयीं। कुछ देर बाद जब मैं विदा लेकर चलने को तैयार हुआ तब मां ने कहा–"पिताजी, इस बार विशुद्धानन्द पिताजी से मुलाकात हुई थी। मैं लड़की की तरह सभी बातें कहती रही ।"

मैं–मां, कल आकर सारी बातें सुनूंगा ।

माँ–अच्छा (जरा सोचकर) कल आने दो और बात कह सकूँ।

यह सुनकर मुझे संदेह हुआ कि क्या माँ मौन होने वाली हैं?

मैं – तब माँ, आज ही सुनूँगा ।

माँ – नहीं, कल ही सुनना ।

शंकरानन्द – कल मैं माँ को स्मरण करा दूँगा ।

माँ – यही करना ।

मैं सोचने लगा–मां आज बाबा विशुद्धानन्द के साथ हुई मुलाकात का विवरण बताना चाहती थीं, मैंने बाधा देकर कोई अन्याय किया है? अगर कल मां मौन हो गयीं तब उन बातों को नहीं सुन पाऊँगा।

अखण्डानन्द स्वामीजी की जबानी सुना कि बाबा भोलानाथ ढाका आना नहीं चाहते थे । मां काफी समझा बुझाकर ले आयी हैं । यहां तक कि रामपुरहाट स्टेशन तक आने के बाद पिताजी कहते रहे– "तुम लोग इन्हें (माँ को) ले जाओ। मैं यहीं रहूँगा ।" किन्तु माँ के अनुरोध पर उनका यह संकल्प समाप्त हो गया ।

दूसरे दिन १४ दिसम्बर, १९३५ ई., शनिवार को भोर के वक्त मां के पास चला आया। जिस वक्त आश्रम में पहुँचा उस समय अंधेरा था । जाकर देखा कि माँ और भ्रमर बरामदे में सोये हुए हैं। दीदी मां पास ही बैठी हुई हैं । सुना कि मां आज काफी भोर में उठकर

मन्दिर के कुलदा दादा[1] से कुछ बातें करने के बाद पुनः सो गयी हैं। कुछ देर बाद बाबा भोलानाथ हाथ–मुँह धोकर जब आये तब मैंने उन्हें प्रणाम किया । इधर यतीन बाबू, राधिका बाबू आदि भक्तगण आने लगे । पर माँ पहले की तरह सोती रहीं । इसी बीच अखण्डानन्दजी प्रातःकिया समाप्त कर आये और मां के जागने की प्रतीक्षा बिना किये प्रणाम करने गये । स्वामीजी कम्बल हटाकर ज्योंही प्रणाम करने लगे त्योंही मां जागकर उठ बैठीं। स्वामीजी की हालत देखकर मैं तथा बाबा भोलानाथ हँस पड़े। देर होते देखकर मैंने माँ से विदा माँगी, क्योंकि मुझे कालेज जाना है।

माँ को प्रणाम करते समय उन्होंने कहा–"आज तुम तो काफी भोर में आये हो ।"

मैं–अगर यह जानती हो तो कम्बल ओढ़ कर सोती क्यों रही?

माँ हँस पड़ीं, पर आगे कुछ नहीं बोलीं ।

कालेज का काम समाप्त कर पुनः आश्रम में जब आया तब दिन के १० बज चुके थे । माँ आश्रम के नामघर में बैठी थीं । एकाएक उठकर बाहर आयीं और एक वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गयीं। मैं मन्दिर में प्रणाम करने के बाद माँ के पास आकर बैठ गया । उस समय माँ एक वृद्ध को उपदेश दे रही थीं ।

मन कैसे स्थिर होता है ?

वृद्ध ने प्रश्न किया था – "मन कैसे स्थिर होता है ?"

---

१. श्रीयुक्त कुलदाकान्त भट्टाचार्य । आप पी. डब्लू. डी. आफिस में कार्य करते हैं । गृहस्थी छोड़कर आश्रम में रहते हैं और अन्नपूर्णा मन्दिर में पूजा करते हैं । माँ के ऊपर ज्वलन्त विश्वास है । एक बार इनके लड़के को हैजा हुआ था । कुलदा बाबू ने डाक्टर को नहीं बुलाया । बोले – 'अगर माँ रक्षा करना चाहेंगी तो वह बचेगा वर्ना मर जायगा ।' लड़का मर गया । पर माँ के प्रति इनका विश्वास गहरा बना रहा ।

माँ कहती रहीं–चंचलता मन का स्वभाव है । वह स्वभावतः इधर–उधर जाना चाहता है । जब तक वह स्थिर नहीं होता । इसीलिए स्वधन पाने के प्रयत्न को मैं साधन कहती हूँ। मन को स्थिर करने के लिए ही साधना है। स्थिर हो जाने पर हो गया । मन को स्थिर करने के लिए एक भाव लेकर रहना चाहिए जैसे नाम करना, सदालोचना करना या सद्ग्रन्थ पाठ करना आदि। जिसे जो अच्छा लगे, उसी को लेकर अधिक–से–अधिक समय लगाये ।

वृद्ध–नाम करते वक्त अगर मन इधर–उधर हो जाय तो क्या उससे कोई लाभ होगा ?

माँ–फल क्यों नहीं होगा ? तुम चलते–चलते अगर आग पर पैर रख देते हो तो उसे देखो या न देखो, तुम्हारे पैर जल जायेंगे। इसी प्रकार नाम मन लगाकर करो या अन्यमनस्क भाव से करो, उसका फल तो रह ही जायगा। अक्सर ऐसा लगता है कि नाम करता जा रहा हूँ, पर उसका फल कहां मिल रहा है ? हम लोग नाम के फलाफल को देख नहीं पाते, परन्तु उसका फल वास्तव में प्राप्त हो जाता है। हम लोगों पर उसकी एक छाप पड़ जाती है । बाद में समझ में आता है कि नाम करना बेकार नहीं गया । मन लगाकर काम करना और अन्यमनस्क भाव से करने में अन्तर अवश्य है । मन से नाम करने पर फल शीघ्र प्राप्त होता है और अन्यमनस्क भाव से करने पर फल शीघ्र प्राप्त नहीं होता । पर फल मिलता है । इसीलिए कहती रहती हूँ कि नाम करना अच्छा है । सांसारिक दृष्टि से देखो, जो लोग सांसारिक विषयों पर अधिक ध्यान देते हैं, उन्हें सांसारिक ज्ञान अधिक होता है। इसी प्रकार शुद्ध भाव से अधिक देर तक रहने पर वह शुद्ध भाव में प्रकट होता है । यह ठीक है कि पहले–पहले अधिक देर तक नाम नहीं करते बनता, कारण यह अच्छा नहीं लगता। बच्चे पढ़ने–लिखने की अपेक्षा खेलना अधिक पसन्द करते हैं । बच्चों को पढ़ाने के लिए

जबरन बैठाना पड़ता है । उसी प्रकार नाम करने के लिए जबरन बैठना पड़ता है। इसके लिए अभ्यास करना पड़ता है। बरतन जब गन्दा हो जाता है, तब उसे साफ करने के लिए मांजना पड़ता है। एक बार घिसने से साफ नहीं होता । जितनी बार घिसा–मांजा जायगा, उतना ही साफ हो जायगा । दियासलाई जलाने के लिए रगड़ना पड़ता है। कब वह दन से जल उठेगी, यह कहा नहीं जा सकता । नाम करना भी उसी प्रकार का है । अभ्यास करते–करते कार्य सिद्ध हो जाता है ।''

''मन अगर इधर–उधर जाता है तो दुःख करने से कोई लाभ नहीं है । उस समय यही सोच लेना चाहिए कि मन जब मेरे अधिकार में न रहकर इधर–उधर जा रहा हैं तब मैं मन के अधिकार में न रहकर जबरन नाम करता रहूँगा । देखा होगा, बच्चे पतंग उड़ाते हैं। पतंग आसमान में इधर–उधर नाचती रहती है, पर वह बंधी रहती है परेता के साथ । पतंग है मन। उसे नाम रूपी तागे से बाँधकर रखना पड़ता है । इसी तरह बंधे रहने पर एक–न–एक दिन मन वश में हो जाता है । चंचलता जिस प्रकार मन का स्वभाव है, उसी प्रकार शान्त होना भी उसका स्वभाव है । उसे शांत करने के लिए एक आश्रय लेना पड़ता है । तुम लोग नौकरी के सिलसिले में एक–दूसरे की सहायता लेते हो । उसी प्रकार मुक्ति के लिए भी नाम का आश्रय लेना चाहिए। नित्य तीन घंटा नाम करना उचित है और क्रमशः इसे बढ़ाते जाओ। अगर किसी दिन किसी कारण से तीन घंटा नाम करना संभव न हो तो जितना समय न किया जाय, उसकी पूर्ति दूसरे दिन कर देना चाहिए। इसी बात का संकल्प करना चाहिए कि तीन से क्रमशः बढ़ाते–बढ़ाते छह घण्टा तक करूँगा और इसी प्रकार का प्रयत्न करना चाहिए । सभी कार्यों में संकल्प की आवश्यकता होती है ।

"धर्म–लाभ के लिए बहुत से लोग गुरु का आश्रय ग्रहण करते हैं। गुरु का अर्थ हम वास्तव में भगवान् को समझते हैं । वे सर्वत्र हैं और हर वक्त हैं। उपदेश सभी स्थानों पर बिखरा पड़ा है । केवल चुन लेने की जरूरत है। यही उपदेश भगवान् नाना रूप से दे रहे हैं । पेड़–पशु से भी हम लोग उपदेश ग्रहण कर सकते हैं । इस अर्थ से गुरु सर्वव्यापी हैं ।"

इस तरह बातें माँ कहती रहीं । अन्त में वृद्ध से बोली– "पिताजी, तुम्हारे पास अवसर ही अवसर है। मेरी बातें याद रखना । जो दिन चला जाता है, वह लौटकर नहीं आता। इसलिए सर्वदा नाम करने का प्रयत्न करना।"

इसके बाद वृद्ध चला गया । कई महिलाएँ माँ के पास बैठी थीं । इनमें से कई महिलाएँ ऊँचे किस्म की बातें करने लगीं जिसमें आन्तरिकता नहीं।

माँ यह देखकर कभी–कभी हँसकर कहती 'माँ, खूब अच्छी बातें कहना सीख गयी हो ।'

हम लोग अपनी बुद्धि–विद्या के प्रति इतने मुग्ध रहते हैं कि अपनी मूर्खताओं के पहाड़ की ओर ध्यान नहीं जाता । वह महिला जरा नखरे के साथ बोली –"माँ, मेरी बड़ी इच्छा है कि तुम्हारा प्रसाद प्राप्त करूँ । घर पर जो कुछ खाती हूँ, वह भी तुम्हारा ही प्रसाद है, पर आपके मुँह का प्रसाद पाने की मेरी बड़ी इच्छा हैं । क्या मेरी इस इच्छा की पूर्ति न होगी?"

इस प्रकार जब महिला ने दो–तीन बार कहा तब माँ ने कहा– "ठीक है । आश्रम में ठहरकर प्रसाद प्राप्त कर लो । (एक महिला से) जाओ माँ, तुम जाकर आज अधिक भोजन बनाओ । हम सभी प्रसाद ग्रहण करेंगे ।"

अन्त में देखा गया कि उक्त महिला ने प्रसाद के लिए इन्तजार नहीं किया । घर में बीमार हैं, कहकर चली गयीं । हाय रे ! यह है हमारा कर्मभोग। कृपा आने पर भी हम कृपा को वरण कर नहीं पाते ।

स्वामी विशुद्धानन्द से माँ की भेंट

उक्त महिला के जाने के बाद मैंने माँ से पूछा –"माँ, बाबा विशुद्धानन्द से आपकी मुलाकात हुई थी । उसके बारे में कुछ बताइये।"

माँ ने कहा–"इस बार काशी जाने पर, पिताजी से मुलाकात हुई थी, पर अधिक देर के लिए नहीं । शायद घंटे डेढ़ घंटे बातें हुईं । गोपी पिताजी हम लोगों को ले गये थे । हम लोग जाकर पिताजी के पास बैठे । पिताजीने हम लोगों के लिए बैठने का स्थान पहले से ही ठीक कर रखा था । मेरी बातचीत करने का ढंग जानते ही हो । मैंने पिताजी से दुलार के साथ कहा –'पिताजी, तुम अनेक लोगों को मैजिक वगैरह दिखाते हो, मुझे भी दिखाओ।'

पिताजी ने कहा– 'तुम तो ठीक से बैठी हो । यह क्या बाहर निकाल रही हो ?' बस मैं तुरंत लड़की बन गयी ।

मैंने उनसे कहा–'पिताजी, मैं आपकी लड़की हूँ । मैं भला क्या जानूँगी ? तुम मुझे जो कुछ सिखाओगे, वही सीखूंगी । तुम अपनी सारी विद्या मुझे सिखा दो ।'

"पिताजी ने ज्योतिष को बुलाकर एक फूल की पंखुड़ियों से स्फटिक तैयार करके दिखाया । तरह–तरह के सुगन्ध तैयार किये । पिताजी जब यह सब कर रहे थे तभी मैंने ताली बजाकर कहा – 'पिताजी, आप जो कुछ कर रहे हैं, मैं सब समझ गयी, लेकिन बताऊँगी नहीं।'

उपस्थित लोग मुझसे कहने लगे–'बताओ न माँ, बाबाजी क्या कर रहे हैं ।'

मैंने कहा–'अगर मैं यह बता दूँगी तो पिताजी मेरे सिर पर डण्डा मारेंगे।'

पिताजी ने कहा–'बेटी, तुझे यह सब क्या दिखाऊँ। तू तो सब जानती है । मैं इन लोगों को दिखा रहा था ।' बाद में पिताजी ने मिठाई मँगाकर हमें खिलाया । पिताजी ने मुझे खिलाया । मैंने भी पिताजी को मिठाई खिलाई।'

पिताजी ने कहा–'बेटी, मुझे याद रखना । भूलना नहीं। जब इधर आना तब मुझसे जरूर मिलना ।'

मैंने चलते समय गोपी बाबू से कहा–''देखिये, पिताजी तुम लोगों को भुलावे में रख रहे हैं । इस चक्कर में मत फँसना । पिताजी के भीतर एक ओर चीज है, उसे बाहर निकालने का प्रयत्न करो ।''

दोपहर के १२ बज चुके थे । यह देख कर मैंने माँ से विदा लेने के लिए कहा – ''माँ, अब उठ (चल) रहा हूँ ।''

माँ–केवल उठने (चढ़ने) का प्रयत्न करते रहना, उतरना मत।

मैंने मन–ही–मन हँसते हुए कहा–''माँ, आपके आशीर्वाद से ऐसा ही हो ।''

तीसरे पहर आश्रम में जाकर देखा – भवानी बाबू[1] ने पाठ आरम्भ किया है । शाम तक पाठ करते रहे ।

पुरुषाकार, जीवभाव और ब्रह्मभाव

शाम के समय माँ टहलने के लिए गयीं और उसके बाद आकर मैदान में बैठ गयीं । माँ के मुँह से उपदेश सुनने के लिए लोग प्रयत्न करने लगे। गणेश बाबू एक प्रश्न करने जा रहे थे । सुना कि यही प्रश्न कल रात को मोती बाबू[2] ने माँ से किया था । उसी को पुनः

१. श्रीयुक्त भवानीचरण नियोगी । आप अवकाश प्राप्त जज हैं ।

२. श्रीयुक्त राजेन्द्रलाल राय । ढाका के प्रसिद्ध वकील श्रीयुक्त महेन्द्र चन्द्र राय के सुपुत्र । आप बैरिस्टर हैं और वर्तमान समय में ढाका में ही प्रैक्टिस करते हैं ।

दुहराया गया । प्रश्न यह था – कल माँ ने कहा था कि भगवान् को पाने के लिए चेष्टा करने की आवश्यकता है । लेकिन सिर्फ चेष्टा करने से ही भगवान् मिल सकते हैं, ऐसी बात नहीं है । इस परस्पर विरुद्ध उक्तियों में आखिर सामंजस्य कैसे हो सकता है ?

माँ ने आगे कहा – जब तक लोगों में चेष्टा हैं, तब तक चेष्टा करनी चाहिए । जब तक चेष्टा की बुद्धि है तब तक चेष्टा करना ही होगा । चेष्टा करते–करते विशुद्ध बुद्धि और विशुद्ध भाव का उदय होगा । यह विशुद्ध भाव क्या है, इसे भाषा द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता । जब उसका उदय होता है, तभी वह समझ में आता है। जब यही विशुद्ध भाव जागता है तब लोग समझ लेते हैं कि चेष्टा या कर्म में कोई तत्व नहीं है । तभी वह भगवान् के हाथ का खिलौना बन जाता है । वे जिस प्रकार नचाते हैं, उसी प्रकार वह नाचता है।''

''इस विशुद्ध भाव को जगाने के लिए एक मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए । वह भाव द्वैत भाव का हो या अद्वैत भाव का हो, इससे कुछ आता–जाता नहीं । ''मैं ही सब'', ''मैं ही सब'' अथवा ''तुम्हीं सब'', ''तुम्हीं सब'' इस तरह का एक भाव लेकर रहना चाहिए। इस भाव में रहते–रहते देखा जाता है कि बाद में दो नहीं है । ''मैं'' है अथवा ''तुम'' है । एक अखण्ड सत्ता में तब सब लय हो जाता है । यही ब्रह्म की अनुभूति है, इसी को भगवान् प्राप्ति कहा जाता है । बातचीत से इसे प्रकट नहीं किया जा सकता । उसे समझने के लिए लाभालाभ कहा गया । बातों में आने पर वह खंड हो जाता है। भाषा तो भासाई (तैरना)। इसीलिए कहा जाता है कि जीव होने पर शिव नहीं बना जाता । जीव भाव कैसा है, मैदान में घेरा लगाकर घर बनाने की तरह । मैदान तो पड़ा है । घेरा बनाकर घर तैयार करने पर भी इस घर के भीतर मैदान है और बाहर भी मैदान है। अगर घेरे को तोड़ देते हो तो वह मैदान फिर मैदान ही रहेगा ।

इसीलिए कहा जाता है कि लाभालाभ कुछ नहीं है । जीव तो स्वरूपतः भगवान् है । सिर्फ बन्धन के लिए उसे जीव कहा जाता है । बन्धन खुल जाने पर वह जो भगवान् है, भगवान् ही रह जाता है । इसीलिए पुनः कहा जाता है कि जितने जीव, उतने ही शिव। इस जीव की नदी के तरंग के साथ तुलना की जा सकती है । नदी के जल में लहर पैदा होती है । ये लहरें हैं जीव और पानी है भगवान् । लहरें लेकिन पानी में पैदा होती है जबकि वास्तव में वह पानी के अलावा और कुछ नहीं हैं । इसी प्रकार जीव की स्थिति भगवान् में हैं और वास्तव में वह भगवान् है । हममें बुद्धि भेद है इसीलिए लहर को हम लोग जल से अलग समझते हैं, वर्ना लहर और पानी में कोई भेद नहीं है । जिस तरह जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है हमारा अज्ञान ही भेद की सृष्टि करता है ।

"इसके अलावा साधारण रूप में देखने पर भी मनुष्य में ब्रह्म के सभी लक्षण दिखाई देते हैं । मनुष्य में भी एकत्व, असीमत्व और अव्यक्त भाव है । हम लोग पाँच मिनट तक किस बात की चिन्ता करते रहे, उसे सब बता नहीं सकते । क्या क्यो सोचता रहा, उसमें से अधिकार बातें बता सकते है, लेकिन सब नहीं बता सकते । इससे मन का असीमत्व प्रकट होता है । दूसरी ओर इस असीमत्व में भी एकत्व है । जैसे हम लोग एक–एक करके बातें करते हैं, एक–एक करके अक्षर लिखते हैं, एक–एक पैर बढ़ाकर चलते हैं, एक–एक ग्रास बनाकर खाते हैं, ये सब एकत्व के लक्षण हैं । दूसरी ओर देखो, हम लोगों में अव्यक्त भाव भी है । हम लोग कहते हैं कि फूल सुन्दर हैं, पर वह कैसा सुन्दर है यह व्यक्त नहीं कर पाते । शायद व्यक्त करते वक्त और भी अनेक बातें कह बैठते हैं, फिर भी सम्पूर्ण भाव व्यक्त नहीं कर पाते । कुछ अव्यक्त रह जाता है । अतएव जीव के भीतर ब्रह्म के लक्षण हैं, इसी से जीव स्वरूपतः ब्रह्म है । इसके अलावा

जीव में एक और वस्तु है जिसे हम सब आनन्द कहते हैं । जीव स्वभावतः आनन्द चाहता है । उसके भीतर यह आनन्द है तभी तो वह उसे चाहता है । अन्यथा वह उसे नहीं चाहता । वह आनन्द बिना माँगे रह नहीं सकता । गौर करने पर आनन्द और शान्ति की यह आकांक्षा समस्त जीवों में देख सकते हो। कीट-पतंग जैसे क्षुद्र प्राणी भी ताप की दिशा में जाना नहीं चाहते। वे भी चाहते हैं शान्ति और आराम। धूप में तपकर जीव-जन्तु छाया खोजते हैं। मनुष्य भी उसी प्रकार त्रिताप ज्वाला में तपकर शान्ति का स्थल, आनन्द के आकर भगवान् को खोजता है। त्रिताप से मुक्ति पाने के लिए अन्य ताप की सहायता लेनी पड़ती है। करना चाहिए। इसी को कहते हैं - तपस्या। ताप सहन करने को मैं तपस्या कहती हूँ। संसार में ताप भोग करने में जैसा कष्ट होता हैं, पहले पहल भगवान् का नाम लेते समय उसी प्रकार का कष्ट होता है। लेकिन कष्ट होने पर इसी कष्ट के द्वारा त्रिताप से मुक्त हुआ जा सकता है। इसलिए जरूरत है प्रयत्न की, जरूरत है कर्म की। पशु-पक्षियों में, भगवान् को पाने की कोई गरज नहीं है। यह सिर्फ मनुष्यों में है जीव को भगवान् ने अज्ञान के पर्दे से ढाक रखा है फिर भी ज्ञान का दरवाजा खुला रखा है। वह उसी दरवाजे से मुक्त हो सकता है। पर यह स्मरण रखना होगा कि परम वस्तु पाने के लिए, भगवान् को पाने के लिए ज्ञान और अज्ञान के ऊपर उठना होगा। जब तक ज्ञान और अज्ञान है अर्थात् भेद-बुद्धि है तबतक ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। जब प्राप्त होता है तब समस्त भेदज्ञान उसमें लय हो जाता है।''

मैं-अगर जीव जल-तरंग की तरह है तो इस जल-तरंग की सृष्टि किसने की?

माँ-जल ने स्वतः तरंग की सृष्टि की है। भगवान् स्वयं ही जीव बन गये हैं।

मै–तो क्या जीव का कर्म–बंधन नहीं है?

माँ–जब तक बंधन का ज्ञान या बुद्धि है तबतक बंधन है। इस बुद्धि के जाने के बाद कर्म–बंधन दूर हो जाता है। सबकुछ भगवान् की इच्छा से होता है। इसे अनुभव करने पर मुक्ति। मेरा कहना है, आज जो तुम भगवान् को चाह रहे हो, यह भी तो उन्हीं की इच्छा है।

गुरु की आवश्यकता–सद्गुरु प्राप्ति

एक वकील – माँ, मेरे कई प्रश्न हैं। गुरु की क्या अवश्यकता है? सद्गुरु कैसे प्राप्त किया जा सकता है? गुरुवंश लोप क्यों हो जाता है?

माँ–तुम लोग बच्चों को पढ़ाने के लिए मास्टर क्यों रखते हो? पढ़ने–लिखने के जैसे मास्टर की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार धार्मिक विषयों के लिए एक गुरु की जरूरत होती है।

वकील–पुस्तकों में तो सब बातें लिखी हैं, फिर गुरु की आवश्यकता?

माँ–यह पुस्तक स्वयं पढ़ी नहीं जाती। बाहरी पुस्तकें पढ़ ली जाती हैं। पर भीतर की पुस्तकें नहीं पढ़ी जाती। गुरु उसे पढ़ा देते हैं वशर्ते गुरु अगर गुरु की तरह हों।

"सद्गुरु की प्राप्ति के लिए विशुद्ध प्रयत्न की आवश्यकता होती है। प्रयत्न विशुद्ध होने पर सद्गुरु की प्राप्ति होती है। देखते होगे कि जब बच्चे माँ–माँ कहते हुए जमीन पर लोटते–पोटते हैं तब माँ स्थिर नहीं रह पाती। वे आने के लिए मजबूर हो जाती हैं। तुम लोग भी इसी प्रकार गुरु को बुलाओ। वे आने के लिए बाध्य हैं। देखो, हम लोग भगवान् के नौकर हैं। भगवान ही हमारे नौकर है। हम लोग जो चाहते हैं, वे हम लोगों को वही देने के लिए बाध्य है।"

"अब रहा गुरु वंश के ध्वंस की कथा। गुरु तो भगवान् हैं, उनका कैसे ध्वंस होगा? अगर लौकिक भाव से देखो तो गुरु-वंश की तरह न जाने कितने वंशों का ध्वंस हो रहा है। इस ध्वंस की विशेषता क्या है? इसके अलावा अगर कोई ठीक-ठीक से कर्तव्य नहीं कर पाता तो अपराध करता है और इसी दोष के लिए ध्वंस होना स्वाभाविक है। मैंने हर तरह से बताया, तुम इसे किसी भी रूप में ग्रहण कर सकते हो।"

अधिक रात हो जाने के कारण माँ को प्रणाम करने के बाद चला आया।

१५ दिसम्बर, १९३५ ई०, रविवार। आज सबेरे जब माँ के पास गया तो देखा कि वे अभी तक सोयी हुई हैं। कुछ देर बाद जब वे जागकर उठीं तो मेदान में टहलने के लिए चल दीं। हम लोग भी उनके साथ चल पड़े। थोड़ी दूर टहलने के बाद वापस आयीं और आश्रम के नामघर में जाकर बैठ गयीं। हम लोग भी माँ के पास बैठे।

अभ्यास के द्वारा स्वभाव का गठन

आज सबेरे के वक्त मोती बाबू हैट-कोट पहनकर आये हैं। इन्हें देखकर माँ ने कहा-"पिताजी आज साहब बनकर आये हैं। पिताजी, हैट-कोट क्यों पहनते हैं ?"

मोती बाबू-सर्दी के कारण ।

माँ-सर्दी के कारण नहीं, बल्कि यह कहो कि यह तुम्हारी आदत है। सर्दी तो सभी के लिए है, पर सभी ऐसी पोशाक नहीं पहनते।

मोती बाबू-मेरे पास कपड़े नहीं हैं।

माँ-कपड़े की क्या कमी है ? सभी दुकानों में कपड़े भरे पड़े हैं। यह जरूर कह सकते हो कि तुम्हारे लायक कपड़े नहीं हैं। देखो, अभ्यास से ही सब होता है। जिस बात का अभ्यास होता है,

वह स्वभाव बन जाता है। हम लोग अक्सर कहते हैं कि हम यह करते हैं, यह खाते हैं, जैसे कपड़े पहनते हैं, चाय पीते है आदि। लेकिन असल में हम न पहनते हैं और न पीते हैं। कपड़े हमें पहनते है और चाय हम लोगों को पीती है। अगर हम लोग पहनते या पीते तो अपनी इच्छानुसार उसे छोड़ भी सकते हैं। लेकिन हम लोगों में कितने लोग ऐसा कर सकते हैं ।

ब्रह्म का स्वरूप

कुछ देर बाद माँ नामघर से चलकर मैदान में आकर बैठ गयीं। बहुत से स्त्री-पुरुष माँ का दर्शन करने आये हैं। इन लोगों के बीच नगेन बाबू[1] को भी देखा।

नगेन बाबू-माँ, ब्रह्म का स्वरूप कैसा है ? तथा उनके गुण कैसे हैं? शास्त्रों में कहा जाता है कि उन्हें सत्, चित्, आनन्द कहा जाता है, क्या यही उनका गुण है?

माँ-उनके स्वभाव या स्वरूप को प्रकट नहीं किया जा सकता, क्योंकि स्वभाव कहने पर अभाव आ जाता है। भाषा के अन्तर्गत लाने पर वे खण्ड हो जाते हैं। हाँ, प्रकट करने के लिए उन्हें सत्-चित्-आनन्द कहा जाता है। वे है, इसलिए सत्; वे ज्ञान स्वरूप हैं, इसलिए चित्। इस सत् का ज्ञान होने पर ही आनन्द है। सत्य वस्तु को जान लेने पर आनन्द, इसीलिए सत्-चित् आनन्द। लेकिन वे आनन्द और निरानन्द के परे हैं।

नगेन बाबू-कुछ लोग ब्रह्म को आनन्द कहते हैं, कुछ ज्योति कहते हैं, कुछ रूप कहते हैं। इस बारे में आपका क्या विचार है? वास्तव में सत्य क्या है?

---

१. श्री युक्त नगेन्द्रनाथ दत्त। आप 'इस्ट बेंगल टाइम्स' के सम्पादक थे। जिन दिनों माँ शाहबाग में रहती थीं, उन्हीं दिनों से आप माँ के भक्त हैं।

माँ–क्या मेरे बताने पर तुम उसे पकड़ कर रख सकोगे? अगर कहो कि पकड़कर रख सकूँगा तो वह तुम्हें बता दूँ।

यह जवाब सुनकर नगेन बाबू परेशान हो उठे।

माँ–मैं तो कह चुकी हूँ कि सभी के निकट मेरी सभी बातें प्रकट नहीं होतीं। जिसका जैसा आधार है, वह उसी प्रकार का उत्तर मेरे निकट पाता है। मैं एक यंत्र मात्र हूँ। मुझे जैसा आघात करोगे, उसी प्रकार का शब्द सुनोगे। मैं तो कहती हूँ कि तुम लोग मेरे पास से शुद्ध सत्य प्राप्त कर लो। तुम लोग भी सुनो और मैं भी सुन लूँ।

नगेन बाबू–वेदों में ब्रह्म को सच्चिदानन्द कहा गया है। तुम ब्रह्म को इससे भी ऊपर बैठाकर किसी नये ज्ञान का प्रचार कर रही हो? क्या यही तुम्हारा कथन है?

माँ–मैं नया कुछ नहीं कह रही हूँ। शास्त्रों में जो है, वह ठीक है। लेकिन शास्त्रों ने कहा ही कितना है? शास्त्र का रूप कैसा है, छत पर चढ़ने के लिए सीढ़ी जैसा। शास्त्र केवल सीढ़ियों का वर्णन मात्र करता है। छत पर चढ़ने के बाद जो प्रत्यक्ष होता है, उसका वर्णन शास्त्रों में नहीं है, क्योंकि जो एक बार छत पर चढ़ गया, उसने तो स्वयं ही सब कुछ देख लिया। जो कुछ देखा, उसके वर्णन की आवश्यकता नहीं है। मार्ग के वर्णन की आवश्यकता है। शास्त्रों में वे यही है। इसीलिए शास्त्र उन्हें सच्चिदानन्द कहते हैं। वास्तव में वे यही हैं, और दूसरी ओर उससे भी ऊपर हैं। तुमने पूछा था कि देव–देवी की जो मूर्तियाँ दिखाई देती हैं, वह सत्य हैं या नहीं। मेरा कहना है कि वे सभी सत्य हैं, दूसरी ओर सब मिथ्या है। ये सब सीढ़ियों के डण्डे हैं। ये सब जीवों के नाना अवस्था, नाना भाव हैं। जब जिस अवस्था में रहना पड़ता है, उस अवस्था में वही सत्य है। बाद में उससे ऊपर उठने पर उस भाव में लय हो जाता है। एक बार में लय हो जायगा, ऐसी बात नहीं है। लेकिन किसी–किसी के

लिए उसका अस्तित्व नहीं रहता। जैसे नीचेवाली सीढ़ी से ऊपर वाली पर चढ़ने से नीचेवाली का लोप नहीं होता। लेकिन जो ऊपर की सीढ़ी पर खड़ा है, उसके लिए न रहने के बराबर है। यह सब भाव सी इसी तरह के हैं। जब हम भाव के राज्य में रहते हैं तब सभी देवी-देवता हमारे निकट सत्य हैं। भाव के इस राज्य को छोड़कर जब हम सत्य के राज्य में जाते हैं तब भाव हममें लय हो जाता है, हमारे निकट वह मिथ्या हो जाता है। हमारे निकट मिथ्या हो जाता है, इसलिए सभी के निकट मिथ्या हो जायेगा, ऐसी बात नहीं है। वह रह जाता है। इस अर्थ से देव-देवी सत्य हैं। अतएव ब्रह्म खण्ड और अखण्ड में युगपत् हैं। वे खण्ड भी हैं और अखण्ड भी हैं। खण्ड में भी वे पूर्ण रूप में है और अखण्ड में भी वे पूर्ण रूप में है। जैसे मेरी ऊँगली स्पर्श करने पर मुझे स्पर्श करना होता है जबकि मैं ऊँगली नहीं हूँ। मेरे कपड़े स्पर्श करने पर भी मुझे स्पर्श किया गया जबकि मैं कपड़ा नहीं हूँ। मेरा अंश जैसे मैं हूँ, वही समग्र में भी मैं हूँ। एक होते हुए भी वे अनेक एवं अनेक होते हुए भी एक हैं। यही उनकी लीला है। बालू के एक कण में वे जिस रूप में पूर्ण हैं, मनुष्य के भोतर भी वे उसी रूप में पूर्ण हैं और अखण्ड में भी वे इसी रूप में पूर्ण हैं। परन्तु इतर जन्तु से मनुष्य में इतना अन्तर है कि मनुष्य में एक विशेष शक्ति है जिसके द्वारा वह पूर्णता प्राप्त कर लेता है। मनुष्य से मेरा मतलब उससे है जिसके मन में होश हुआ है, वही मनुष्य है। जिसके मन में होश नहीं हुआ है जो विषय-वासना में तन्मय है, उसे मनुष्य नहीं कहा जा सकता और न वह ब्रह्मज्ञान का अधिकारी है। इतर जन्तुओं में यह शक्ति नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता। पर हममें उस शक्ति का प्रकाश नहीं या कदाचित् प्रकाश होता है। तुम लोग यह जानते हो कि भगवान् मत्स्यरूप में, कूर्मरूप में, वराहरूप में आविर्भूत हुए थे। इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि वे मत्स्य-कूर्म आदि जीव-जन्तु में भी पूर्ण रूप में हैं और उनमें स्वयं प्रकट होकर

वे इस सत्य का प्रचार कर चुके हैं। अवतारवाद का यही रहस्य है। इसीलिए कहती हूँ कि खंड में भी वे हैं, अखंड में भी वे हैं, वे युगपत् उभय में हैं।''

हम लोग मैदान में बैठे माँ का उपदेश सुन रहे थे। उसी समय ढाका विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार खानबहादुर नाजिरुद्दीन अहमद सबेरे टहलने के लिए उसी मैदान में आते हैं। उन्हें देखते ही नगेन बाबू और अवनी बाबू बुलाकर माँ के पास लाये। भूपति बाबू ने माँ से उनका परिचय कराते हुए कहा – ''आप मुसलमान हैं।''

माँ रजिस्ट्रार साहब की ओर देखकर हँसती हुई बोलीं – ''पिताजी, मैं भी मुसलमान हूँ।''

माँ की बातें सुनकर (स्व) विभूचरण गुहठाकुरता तथा श्रीयुक्त नगेन्द्र दत्त महाशय ने माँ द्वारा नमाज पढ़ने की कहानी रजिस्ट्रार साहब को सुनाई। मुझे ऐसा लगा कि माँ के उक्त कथन के अन्तर्गत उस कहानी का कोई सम्बन्ध नहीं है। ''मुसलमान'' शब्द का अर्थ है – 'भगवान् का आज्ञाकारी भृत्य।' शायद इसी अर्थ में माँ ने अपने को मुसलमान कहा।

रजिस्ट्रार साहब ने कुछ देर बैठने के बाद अन्य व्यक्ति के मार्फत माँ से प्रश्न पूछा। उन्होंने पूछा कि जब आप शान्ति प्राप्त कर चुकी हैं तब यहाँ–वहाँ क्यों घूमती रहती हैं?

अब माँ को यह प्रश्न कहा गया तब माँने कहा – ''अगर मैं एक जगह रह जाऊँगी तो यह प्रश्न उठ खड़ा होगा कि मैं एक जगह क्यों रहती हूँ''

कुछ देर माँ देव दुर्लभ हँसी हँसने के बाद बोलीं – ''पिताजी मैं बहुत अशान्त लड़की हूँ, इसीलिए एक जगह नहीं रह पाती। अगर दूसरी ओर देखो तो मैं कहूँगी कि तुम लोगों में आने जाने की बुद्धि है, इसीलिए तुम लोग कह रहे हो कि मैं इधर–उधर जाती हूँ। वास्तव

में मैं एक ही स्थान पर हूँ। यों कह सकती हूँ कि मैं इधर-उधर नहीं जाती मैं अपने ही घर में घूम रही हूँ। तुम लोग जब अपने घर पर रहते हो तब क्या अपने घर के किसी कोने में बैठे रहते हो ? तुम लोग भी तो अपने घर में घूमते रहते हो ? उसी प्रकार मैं भी अपने घर में घूमती रहती हूँ। यह संपूर्ण विश्व मेरा घर है। मैं घर में ही हूँ।''

शान्ति प्राप्ति के उपाय

रजिस्ट्रार-आप बहुत शान्ति में रहती हैं। हम लोगों को बहुत झंझट है। कैसे शांति प्राप्त किया जा सकता है? आप क्यों नहीं हम पर शांति छींट देती ?

माँ - (हंसकर) तुम पूछ रहे हो कि किस उपाय से शांति प्राप्त की जा सकती है। मेरा कहना है कि जब तुम यह देखोगे कि ''किस उपाय से'' यह भाव जागृत होगा तभी शांति का मार्ग खोज लोगे।

माँ के कहने का ढंग देखकर हम सब अट्टहास कर उठे।

माँ - अशान्ति की सामग्री लेकर रहोगे तो शान्ति कहाँ से प्राप्त करोगे ? जिस वस्तु को लेकर रहा जाता है, उसकी आँच शरीर को लगती है। जैसे गरम वस्तु के पास जाने पर गरम आंच लगती है और ठंढी सामग्री के पास जाने पर ठंढी आंच लगती है। विषय लेकर रहने, अशान्ति वाली वस्तु लेकर रहने पर अशान्ति आयेगी ही। सत् या शुद्ध वस्तु लेकर रहने पर अखण्ड शांति। इसके अलावा अन्य विषय केवल खण्ड शान्ति अर्थात् शान्ति और अशान्ति का मिश्रण। इसलिए कहती हूँ कि सर्वदा उन्हें स्मरण करते रहो। काली कहो या अल्लाह कहो या खुदा-खुदा कहो, इससे कुछ आता-जाता नहीं। क्योंकि सब एक हैं। असल कार्य है - सर्वदा उन्हें स्मरण करने का प्रयत्न करो। आज तुम लोगों को एक कहानी सुना रही हूँ-

"एक राजा था। धन-दौलत की कमी उसके पास नहीं थी। इतना रहने पर भी उसे शान्ति नहीं मिलती थी। एक दिन लोगों की जबानी उसने सुना कि गुरु से दीक्षा लेकर जप-तप करने से शान्ति मिलती है। इसके बाद वे अपने कुलगुरु को खोजने लगे। अबतक कभी उन्होंने अपने कुलगुरु की तलाश नहीं की थी। इधर कुलगुरु अभाव के कारण दरिद्र जीवन व्यतीत कर रहे थे। राजा उनसे दीक्षा लेना चाहते हैं, सुनकर वे आनन्द से विभोर हो उठे। उन्होंने राजा के निकट बताया कि उनके पास एक ऐसा मंत्र है जिसके जप करने से कुछ दिनों बाद राजा को शांति प्राप्त होगी। शुभ दिन देखकर राजा ने दीक्षा ली। इस उपलक्ष्य में गुरु ने अपनी आर्थिक स्थिति ठीक कर ली। उन्हें अब कोई अभाव नहीं रह गया। इधर राजा गुरु से मंत्र लेकर यथाविधि जप करने लगे, पर उनकी अशांति बनी रही। उपराम के चिह्न दिखाई नहीं दिये। तब राजा ने गुरुदेव को बुलाकर कहा - 'आपके कथनानुसार मैने दीक्षा ली। जप-तप भी आपके उपदेश के अनुसार करता जा रहा हूँ लेकिन शांति नहीं मिल रही है। मैं आपको और सात दिन का मौका दे रहा हूँ। अगर इस बीच मुझे शांति प्राप्त नहीं हुई और उसे प्राप्त करने का कोई नवीन मार्ग अगर नहीं बता सकेंगे तो सात दिन के बाद मैं आपके साथ पूरे परिवार को फांसी दे दूँगा।'

राजा की बात सुनकर गुरुदेव के होश उड़ गये। भूख-प्यास समाप्त हो गयी। निद्रा गायब हो गयी। वे आसन्न मृत्यु की चिन्ता में अस्थिर हो उठे। कुलगुरु का एक ही लड़का था - गोबर गणेश। पढ़ा-लिखा नहीं था। जंगल और इधर-उधर घूमा फिरा करता था। भोजन के समय घर आता और फिर कहाँ गायब हो जाता था, किसी को पता नहीं। धीरे-धीरे छः दिन बीत गये। सातवें दिन कुलगुरु के घर रसोई तक बनने की नौबत नहीं आयी। भय और दुश्चिन्ता से गुरु और गुरु-पत्नी की स्थिति मृतवत् हो गयी। दोपहर के वक्त गुरु-पुत्र भोजन के लिए आये तो कहीं कुछ तैयारी नहीं है। नाराज होकर

वह अपने माँ–बाप को गालियाँ देने लगा। माता–पिता ने भी उसे खूब गालियाँ दीं। यह दृश्य देखकर उसे आश्चर्य हुआ। कारण का पता लगाना शुरू किया, तब पिता ने सारी कहानी सुनाई। यह भी बताया कि अगर कल कोई मार्ग न बताया गया तो हमारी मौत निश्चित है।

यह सुनकर लड़के ने कहा –'इसके लिए चिन्ता करने की जरूरत नहीं। आपलोग भोजन बनाने की तैयारी करें। मैं कल राजा को शान्ति का मार्ग बता दूँगा।'

लड़के की बात सुनकर गुरुदेव आश्वस्त हुए और स्नानादि के बाद आहार करने गये। दूसरे दिन पिता–पुत्र एक साथ राजमहल गये। गुरु को देखते हो राजा ने कहा – 'गुरुदेव आपके कथनानुसार पिछले सात दिनों से जपादि करता आ रहा हूँ, पर शान्ति प्राप्त नहीं हुई। मुझे शान्ति क्यों नहीं मिली, आज अगर आप नहीं बता पायेंगे या शान्ति पाने का कोई नया मार्ग नहीं दिखा सकेंगे तो अपने निश्चय के अनुसार आपको मौत की सजा दूँगा।'

गुरुदेव पूर्व शिक्षानुसार राजा से बोले – 'महाराज, आपको शान्ति क्यों नहीं मिली, इसका उत्तर मेरा पुत्र देगा।'

राजा ने गुरुपुत्र से पूछा – 'क्या तुम इस बात का उत्तर दे सकोगे ?'

गुरुपुत्र ने कहा – 'हाँ, महाराज, मैं उत्तर दूँगा। लेकिन आपको मेरे कथनानुसार कार्य करना पड़ेगा। मेरे कथनानुसार कार्य करने पर आप समझ जायेंगे कि आप अब तक शान्ति क्यों नहीं प्राप्त कर सके और शान्ति का मार्ग कौन सा है।'

राजा राजी हो गये। गुरुपुत्र के निर्देशानुसार राजा और कुलगुरु दो बड़ी रस्सियाँ लेकर जंगल के भीतर रवाना हुए। कुछ दूर जाने के बाद देखा गया कि तीन वृक्ष पास–पास हैं। गुरुपुत्र उन्हें इन्तजार करने को कहकर एक पेड़ से राजा को कसकर बाँध दिया और दूसरी

रस्सी लेकर अपने पिता को दूसरे वृक्ष से बाँध दिया। बीच वाले पेड़ पर चढ़कर वह प्रसन्न चित्त से गीत गाने लगा। इधर बन्धन की यंत्रणा से राजा व्याकुल हो उठे। उन्होंने गुरुपुत्र से कहा कि मेरी रस्सी खोल दो। लेकिन उसने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। वह अपनी इच्छानुसार इस पेड़ से उस पेड़ पर उछलता-कुदता और गाता रहा तब राजा ने गुरुदेव से कहा - "मेरा बन्धन खोल दो।"

गुरुदेव बोले -"मैं तो स्वयं ही बंधा हुआ हूँ। आपको कैसे खोलूँगा?"

दर्द से बेचैन होने के कारण राजा को दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ। उन्होंने सोचा - "ठीक ही तो है। संसार के बंधन में रहकर मैं शान्ति प्राप्त कैसे कर सकता हूँ ? इसके अलावा जो स्वयंबद्ध है, वह मुझे कैसे मुक्ति दिला सकता है?"

इस तरह की बातें सोचते हुए राजा ने गुरुपुत्र को बुलाकर कहा - "अब मेरा बन्धन खोल दो। मुझे शान्ति का मार्ग मिल गया है।"

गुरुपुत्र ने तुरन्त उन्हें बंधन-मुक्त कर दिया। राजा घर वापस नहीं आये। संन्यास लेकर चले गये।

विषय में आबद्ध रहने पर शान्ति कैसे प्राप्त कर सकते हो ? मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि शान्ति प्राप्त करने के लिए जंगल में जाना पड़ता है। गृहस्थी में रहकर भी शान्ति प्राप्त की जा सकती है। संसार उन्हीं के निकट तापमय है जिन्होंने सं को सार बनाया है। इसीलिए कहती हूँ पिताजी, तुम लोग अपनी इस लड़की को गोद में उठा लो। तुम लोगों ने इसे माँ कहकर कोने में रख छोड़ा है। माँ तो बुढ़िया है। बुढ़िया को तुम लोग गोद में नहीं उठाते। मुझे अपनी लड़की समझकर गोद ले लो। यह मेरी प्रार्थना है।"

इस दिन दोपहर को कीर्तन होने की बात थी। तीसरे पहर जरा विलम्ब से आश्रम गया। उस समय भी कीर्तन हो रहा था। शाम के बाद माँ आश्रम के बाहर आकर बैठीं। तब बातचीत चालू हुई।

दीक्षा का समय, कुलगुरु, गुरु प्राप्ति आदि

अवनी बाबू[1] – माँ दीक्षा का समय अर्थात् दिन–तिथि आदि होती है?

माँ–यह संस्कार पर निर्भर करता है। सद्गुरु जब दीक्षा देते हैं तब वार, तिथि, शुचि–अशुचि आदि पर विचार नहीं करते। दूसरी ओर कभी–कभी इस पर विचार करना पड़ता है।

क्षितीश बाबू[2]–'गुरु अपने आप आते हैं' इस बात का क्या अर्थ है ?

माँ–'सब तो अपने आप हो जाता है। हम लोग अज्ञानी हैं, इसलिए समझ नहीं पाते। लौकिक दृष्टि से देखने पर यह देखा जाता है कि लोगों में गुरु पाने की इच्छा जागृत होती है, और वे उसे खोज लेते हैं। इसके बात उनसे दीक्षा ग्रहण करते हैं। लेकिन वास्तव में यह सब अपने आप हो जाता है। समय होने पर सब अपने आप हो जाता है तब इच्छा जाग्रत होतो है और गुरु मिल जाते हैं। देखते होंगे कि बीज के बोने के बाद पौधा अपने आप निकलता है। उसके लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता। उसी प्रकार बिना प्रयत्न के जगत् की सभी चीजें अपने आप होती जा रही हैं। अगर कोई यह सोच ले कि मेरे गुरु अपने आप मेरे पास आकर मुझे दीक्षा देंगे और वह स्थिर होकर बैठ जाय तो गुरु जरूर उसके निकट आयेंगे। लेकिन यह भाव साधारण लागों में नहीं होता। साधारण लोग गुरु को खोजकर उनसे दीक्षा लेते हैं।'

क्षितीश बाबू–कुलगुरु से दीक्षा ली जा सकती है ?

माँ–अगर भक्ति विश्वास रहे तो क्यों नहीं ली जा सकती ? गृहस्थों को कुलगुरु से ही दीक्षा लेनी चाहिए। कुलगुरु वंश के मंगल की चिन्ता करते हैं। अतएव उनसे मन्त्र लेकर कार्य करना उत्तम है।

---

१. श्री युक्त अवनीमोहन बसु। आप ढाका के एक वकील और माँ के भक्त हैं।

२. श्रीयुक्त क्षितिशचन्द्र चौधुरी। आप ढ़ाका विश्व विद्यालय के रजिस्ट्रार कार्यालय के हेड क्लर्क थे।

क्षितीश बाबू–अच्छा, नाम करने का अर्थ हैं गुरुदत्त द्वारा नाम करना।

माँ–हाँ, नाम करने के अर्थ है इष्ट नाम जप करना।

क्षितिश बाबू–गुरु प्रदत्त नाम बीच–बीच में करने के बाद कीर्तनादि किया। क्या इसमें कोई दोष है ?

माँ–दोष कैसा ? यह सब तो अच्छा है। सभी नाम उनके हैं। सभी शुद्ध भाव के सहायक हैं।

मैं–नाम के साथ क्या संस्कार का कोई सम्बन्ध नहीं है ?

माँ–तुम्हारे प्रश्न का मतलब नहीं समझ पाई।

मैं–गुरु जो नाम देते हैं, वह तो नशे में आकर नहीं देते। शिष्य के संस्कार को लक्ष्य करके देते हैं।

माँ–जरूर।

मैं–ऐसी हालत में उस नाम को छोड़कर शिष्य अगर अन्य नाम जप करे तो वह किस तरह सहायता करता है ?

माँ–भाव तो एक ही है। सभी नाम तो वही एक भाव प्रकट करते हैं। अतएव नाम, पूजा, भजन जो कुछ भी क्यों न करो; उससे शुद्ध भाव की पुष्टि होगी।

मैं–माँ, तुम प्रत्येक बात का उत्तर उच्चस्तर में मत दो। पहले निम्न स्तर से आरम्भ करो, फिर उच्चस्तर तक जाओ तभी हम तुम्हारी बात ठीक से समझ सकेंगे। मेरा प्रश्न यह है कि हम लोग एक नाम लेकर जप करने लगे। हम लोग सिर्फ जप नहीं करते। ध्यान भी करते हैं। ठीक–ठीक ध्यान हम लोगों से नहीं होता। फिर भी हम लोग किसी एक मूर्ति की कल्पना कर लेते हैं या किसी चित्र का चिन्तन करते हैं। उद्देश्य मन को स्थिर करना। लेकिन एक नाम छोड़कर जब अन्य सामान्य नाम ग्रहण करेंगे तभी नाम के साथ–साथ भिन्न मूर्ति ध्यान

में आ जायगी। यदि क्रमशः हमलोग भिन्न नाम और भिन्न ध्यान करते रहें तो चित्त स्थिर न होकर चंचल हो जायगा। ऐसा चंचल चित्त धर्म का सहायक किस रूप में होगा ?

माँ–मैं तुम्हें पहले भी बता चुकी हूँ कि लोग ध्यान नहीं करते। ध्यान अपने आप हो जाता है। इसके अलावा यदि एक नाम किसी के मन में बैठ जाय तो वह भले ही कोई भी नाम सुने क्यों नहीं, उसे ऐसा लगता है कि वह एक ही नाम सुन रहा है। सभी नामों में वह एक ही नाम की ध्वनि पाता है। तुमने मुझे नीचे उतरकर उत्तर देने को कहा है, मैं उस प्रकार से भी दे रही हूँ। प्रथम नाम–अभ्यास करने के लिए एक नाम से आरम्भ करना अच्छा है। उसे मन पर बैठा लेने की चेष्टा करनी चाहिए। गुरु ने जो नाम दिया है या जो नाम अच्छा लगे, उसी का जाप करना चाहिए। बाद में मन पर जब वह बैठ जाता है तब उच्च अवस्था की प्राप्ति होती है। अगर और नीचे उतर कर आने को कहो तो कहूँगी कि जिन लोगों में धर्म भाव ठीक से प्रस्फुटित नहीं हुआ है, ऐसे लोग किसी भी नाम को ले सकते हैं, जैसी पूजा की इच्छा हो, कर सकते हैं। किसी प्रकार से धर्म–भाव को जगाये रखने के लिये पूजा–जप, ध्यान, कीर्तन, दान जो कुछ करेंगे, उससे उपकार प्राप्त करेंगे। अब तो समझ गये ?

मैं–हाँ माँ, समझ गया।

सिद्धि प्राप्ति–देव दर्शन

एक वकील–कैसे सिद्धि प्राप्त की जा सकती है और उस समय जीवात्मा क्या दर्शन करता है ?

माँ–पूर्ण रूप से शुद्ध होने पर ही सिद्ध हुआ जाता है और तब जीवात्मा सब सिद्ध दर्शन करता है। (सभी हँस पड़े) सिद्धि का अर्थ तुम क्या समझते हो ? सिद्धि तो अनेक प्रकार की हैं। जैसे अष्ट सिद्धि किसी भी विषय पर सिद्धि प्राप्त करना। तुम कौन सी सिद्धि बता रहे हो ?

फिर यह भी कह रहे हो कि सिद्धि प्राप्त करने पर क्या देखने में आता है ? मेरा कहना है कि सिद्धि प्राप्त करने पर सिद्ध (पका हुआ) देखने में आता है। जैसे आलू सिद्ध, परोरासिद्ध। (सभी हँस पड़े)। यह हँसने की बात नहीं है। यह पूर्ण सत्य है। वह देखता है कि सब 'मैं' हूं अथवा सब 'तुम' हो। फिर 'मैं', 'तुम' जगत् सब कुछ एक में लय हो जाता है। इसी को भगवान् की प्राप्ति या ब्रह्म दर्शन कहते हैं।

प्रमथ बाबू–यह जो सुनता हूँ कि भगवान् आकर दर्शन देते हैं। लोग उनसे बात करते हैं, क्या यह झूठ है ?

माँ–मेरा कहना है कि बिलकुल झूठ। (कुछ देर चुप रहने के बाद) पुनः कह रही हूँ कि वह पूर्ण सत्य है। (मेरी ओर देखती हुई)। यह सब तो सवेरे की बात है। जब तक हम लोग अभाव के स्वभाव में हैं तबतक यह सब दर्शन–स्पन्दन है। स्वभाव में स्थिति होने पर सब एकाकार हो जाता है।

प्रमथ बाबू–अभाव का स्वभाव समझ में नहीं आया, माँ। साफ–साफ कहें।

माँ–हम लोग इस समय अभाव में हैं। यही हम लोगों का स्वभाव हो गया है। जैसे हम लोगों को भूख लगती है, हम लोग अभाव बोध करते हैं, बाद में खाने पर अभाव दूर हो जाता है। इसके बात नींद का अभाव अनुभव करते हैं, नींद से जागने पर घूमने या गपशप करने का अभाव बोध करते हैं। इसी प्रकार एक न एक प्रकार का अभाव बना रहता है। हम लोग इसी अभाव के बीच स्थिति प्राप्त करते हैं। इसी को अभाव का स्वभाव कहा जाता है। इसी से होकर स्वभाव में जाना पड़ता है। स्वभाव में जाने की क्षमता मनुष्यों में है, इसीलिए कहा जाता है कि मनुष्य के भीतर जिस प्रकार अज्ञान का पर्दा है, ठीक उसी प्रकार ज्ञान के दरवाजे हैं। ज्ञान के दरवाजे से होकर लोग स्वभाव की ओर लौटते हैं, स्थिति प्राप्त करते हैं।

इसके बाद कीर्तन करनेवाले लोग एक–एक कर विदा माँगने लगे। कीर्तन अधिकारी ने माँ के पास आकर कहा– "माँ, पिछले वर्ष आपके यहाँ कीर्तन करने आया था, पर तुम नहीं थी इसलिए कीर्तन नहीं किया। पिछले साल मेरा ३०० रुपये नुकसान हो गया । डर है कि कहीं इस वर्ष भी ऐसी घटना न हो जाय। अब तुम यह बता दो कि इस बार मैं किधर कीर्तन करने जाऊँ ?"

माँ–यह सब बातें मैं नहीं बताती, कह नहीं पाती। तुम लोग उसका नाम लेकर निकल पड़ो। जिधर जाना हो, चल दो। चिन्ता किस बात की।

पूर्व जन्म का संस्कार

इसके बाद कीर्तनिया से माँ ने कहा–"पिताजी, बिना बाजा के मुझे एक गीत सुनाओ।"

यह सुनकर कीर्तनिया ने एक छोटे बच्चे को गाने को कहा। बच्चा माँ के पास आकर बैठ गया। माँ ने बच्चे से पूछा–"तुम्हारा नाम क्या है ?"

बालक–हरिदास।

माँ–क्या तुम लोगों ने इसका यह नाम रखा है। या बचपन से इसी नाम से इसे बुलाया जाता है ?

कीर्तनिया–इसका यह नाम रखा गया है।

माँ–(बच्चे से) तुम्हारे पिता का क्या नाम है ?

बालक–केरामत अली।

यह सुनकर माँ प्रसन्न हो उठीं और बच्चे के दोनों गालों को दबाकर प्यार किया।

माँ–देखो, कैसा योगायोग है। मुसलमान के घर जन्म लेने पर भी पूर्व संस्कार के कारण यहाँ (अर्थात् हिन्दुओं के सम्पर्क में) आ गया है और कृष्ण नाम गाता फिर रहा है। इसीलिए मैं कहती हूँ कि धर्म में जाति– वर्ण का भेद नहीं होता।

लड़के ने गाना शुरू किया–

"संसार माया छाड़िये कृष्ण नाम भज मन।"

अत्यन्त मधुर स्वर में गाता रहा। उपस्थित सभी लोगों को पसन्द आया।

माँ–पूर्वजन्म के संस्कार गायन के ढंग से पकड़ में आ जाते हैं। (बालक से) तुम्हारा कौन–कौन है ? किसके पास रहते हो ?

कीर्तनिया–इसका कोई नहीं है। हमारी पार्टी में रहता है और हम लोगों के साथ गाता फिरता है।

माँ–(बालक से) जब तुम्हारा कोई नहीं है तब तुम मेरे साथ रहो। मैं तुम्हारा गाना सुनूँगी। क्यों ?

ये बातें कितने मधुर स्वर में कही गयीं, यह बताना कठिन है। मानो माँ विश्व का समस्त स्नेह और ममता उड़ेलकर बोल रही थीं। बालक चुप रहा।

माँ–क्यों, तुम मेरे पास रहोगे ? तुम्हारा तो अपना कहने को वहां कोई नहीं है, मेरे पास भी नहीं है। तब मेरे पास तुम्हें रहने में कौन–सी आपत्ति है ? मेरे पास रहोगे, मुझे गाना सुनाओगे, क्यों ठीक है ?

बालक–मेरे ऊपर आप अपनी कृपा रखियेगा। (सभी हँस पड़े)।

माँ–मेरे साथ इसकी जाने की इच्छा नहीं है, इसलिए ऐसा उत्तर दिया।

बालक विदा मांगकर चला गया। मैं सोचने लगा कि अभी समय नहीं हुआ है जानते हुए भी माँ ने ऐसा क्यों किया ? इस बालक को अपने पास बुलाने के लिए गीत सुनने की इच्छा प्रकट की। यह मुसलमान का बालक है, किसी के बिना बताये माँ पहले से जान गयी थीं। इसीलिए 'हरिदास' नाम सुनने के बावजूद माँ ने पूछा–'क्या यह नाम इसे दिया गया है ?' यहाँ तक कि माँ इसके पूर्व जन्म के संस्कार के बारे में भी जानती हैं, इस सम्बन्ध में इंगित किया। फिर ऐसी स्थिति में उसे बुलाकर इस तरह के प्रश्न क्यों पूछे गये ? क्या यह कृपा करने का छल है ? माँ ने बालक को स्पर्श भी किया जबकि सचराचर वे ऐसा नहीं करतीं। किस उद्देश्य से माँ ने ऐसा किया, इसे केवल माँ ही जानती हैं।

कुछ देर बाद बाउल बाबू गाने के लिए आ गये। इन्हें देखते ही माँ ने पूछा–"पिताजी, कैसे हैं ?"

बाउल बाबू–तुम कैसी हो, पहले यह बताओ, तब हम लोग कैसे हैं, बतायेंगे। (माँ के पास बैठते हुए) मां, हम लोग बद्धजीव हैं। बाल–बच्चों की गृहस्थी में फँसे रहते हैं। तुम लोग पहाड़ पर रहती हो। सुना है कि पहाड़ पर रहने से समतल भूमि दिखाई नहीं देती।

माँ–पहाड़ पर रहने से नीचे के लोग दिखाई नहीं देते, ऐसी बात नहीं है। हाँ, तब सब बराबर मालूम पड़ता है।

बाउल बाबू–इतने दिनों बाद पिता के घर से (अर्थात् हिमालय पर्वत से) आयी हो। हम लोगों के लिए क्या लायी हो ?

माँ–मैं अपने को तुम लोगों के लिए लायी हूँ। मैं ही तो तुम सब।

इसी तरह की बातें बराबर चलती रहीं। बातचीत में माँ को लाजवाब करना मनुष्य के लिए सम्भव नहीं है। रात नौ बजने के बाद माँ को आश्रम के भीतर ले जाया गया। मैं भी विदा लेकर चला आया।